समयसार, ६८ गाथा, दूसरा पैराग्राफ। **इसी प्रकार राग,...** पहले कहा न? कि गुणस्थान, जो चौदह गुणस्थान हैं, वे पुद्गलपूर्वक होते होने से वे अचेतन / पुद्गल हैं; आत्मा नहीं। आहाहा! जौ पूर्वक, जौ का दृष्टान्त दिया था न? जौ पूर्वक जौ होता है। जौ होने में जौ कारण है और जौ उसका कार्य है। इसी प्रकार आत्मा में जितने गुणस्थान के

भेद पड़ते हैं, वे पुद्गल कर्म के कारण से भेद पड़ते हैं, इसलिए वे पुद्गल ही हैं; वे आत्मा नहीं। आहाहा!

**इसी प्रकार राग,...** राग **भी पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से,...** तीसरी लाईन लेना। **राग, भी पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से...** आहाहा! शुभ और अशुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का राग या हिंसा, झूठ, चोरी का राग, वह राग **पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से...** आहाहा! तीसरी लाईन है। **सदा ही अचेतन होने से...** आहाहा! राग अचेतन है। राग में चैतन्य ज्ञायकस्वरूप का अंश नहीं है। भगवान चैतन्य अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु है, उसका अंश राग में नहीं है। चाहे तो व्रत, तप, भक्ति आदि का राग हो, चाहे तो विषय, कमाने आदि का राग हो, वह राग पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, पुद्गलपूर्वक होते होने से... ऐसा है न? **सदा ही अचेतन होने से...** इस कारण राग सदा ही अचेतन है। आहाहा! यहाँ तो अभी (लोग कहते हैं,) शुभराग से धर्म होता है। अरे रे! यह राग पुद्गलपूर्वक होते होने से पुद्गल-सदा अचेतन है। आहाहा! है? **पुद्गल ही है...** विशेष इतना कहा। पुद्गलपूर्वक होते होने से **सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं, जीव नहीं - ऐसा स्वतः सिद्ध हो गया।** आहाहा! ऐसी बात।

इसी प्रकार **द्वेष,...** द्वेष जो होता है, अरुचि-प्रतिकूलता के प्रति द्वेष। अनुकूलता में राग, प्रतिकूलता में द्वेष। वह द्वेष, पुद्गलपूर्वक होते होने से... आहाहा! सदा ही पुद्गल ही है। इस कारण अचेतन होने से, पुद्गल ही है। आहाहा! ऐसी बात है।

**मोह,...** मिथ्यात्व अथवा परसन्मुख की सावधानी का भाव। आहाहा! वह भी पुद्गलपूर्वक होता होने से, सदा ही अचेतन होने से, पुद्गल ही है। पुद्गल ही है-ऐसा यहाँ कहा। पुद्गल ही है। कथंचित् आत्मा और कथंचित् (पुद्गल, ऐसा नहीं)। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा तो चैतन्य अनादि-अनन्त चैतन्यद्रव्य है, वह तो अभेद है, उसमें ये जितने भेद दिखते हैं, वे सब अचेतन हैं। आहाहा! जीव नहीं।

**प्रत्यय,...** आस्रव। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग ये चार भाव हैं, वे पुद्गलपूर्वक होते होने से पुद्गल हैं। सदा ही अचेतन होने से पुद्गल हैं। **पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं...** ऐसे तीनों सिद्ध किये। आहाहा! मिथ्यात्व,

अव्रत, कषाय, और योग ये आस्रव हैं। आहाहा! ये आस्रव **पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से...** आहाहा! **पुद्गल ही हैं-जीव नहीं...** यह जीव-अजीव अधिकार है न? आहाहा! आगे कहेंगे, जीव तो अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! स्वसंवेदन-अपनी निर्मलदशा ज्ञात द्वारा जानने में आता है, वेदन में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। श्लोक है, फिर श्लोक कहेंगे।

**कर्म,...** कर्म तो जड़ है, वे तो पुद्गलकर्म हैं। **नोकर्म,...** मन, वाणी, देह, वह भी जड़ है। **वर्ग, वर्गणा,...** वह तो जड़ है। **स्पर्धक, अध्यात्मस्थान,...** आहाहा! अध्यवसाय के प्रकार। आहाहा! रागादि की एकताबुद्धि का जो अध्यवसाय, उसके जो असंख्य स्थान, वे सब पुद्गलपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं। आहाहा! उन्हें जीव नहीं कहते-ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहाँ सुना है? यहाँ तो कहते हैं, यात्रा का भाव, भगवान की भक्ति का राग आस्रव... आस्रव है। आहाहा! वह अध्यवसाय, एकत्वबुद्धि, सब पुद्गलपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सभी शुभ और अशुभभाव पुद्गल है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह फिर आयेगा, अब आयेगा। अभी आयेगा। यहाँ तो अभी अध्यात्मस्थान।

**अनुभागस्थान,...** यह जड़ में। **योगस्थान,...** कम्पन के योग प्रकार। **बन्धस्थान, उदयस्थान,...** लो! ठीक! जितने उदयस्थान हैं, रागादि के अनेक प्रकार, वे सब पुद्गलकर्म -पूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से, पुद्गल ही है। आहाहा! **मार्गणास्थान,...** ठीक! चौदह। आहाहा! ये मार्गणास्थान पुद्गलपूर्वक होते होने से, पुद्गल सदा अचेतन होने से पुद्गल ही है। आहाहा!

**स्थितिबन्धस्थान,...** कर्म में स्थिति पड़ती है न? वह तो पुद्गल है ही। **संक्लेश -स्थान,...** यह अशुभयोग, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, काम-क्रोध, आदि के भाव जो अशुभ हैं, वे पुद्गलपूर्वक होते होने से, पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं। आहाहा! जितना व्यवहार पंच महाव्रत और दया, दान, व्रतादि के भाव हैं, वे सब पुद्गलपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से अर्थात्

पुद्गलपूर्वक हुए हैं, इसलिए सदा ही अचेतन हैं, ऐसा कहा। अर्थात् उनमें चेतन का भाव नहीं, इसलिए पुद्गल ही है। आहाहा! आहाहा! शान्ति से क्या वस्तु है, वह समझते नहीं और झगड़ा... झगड़ा... झगड़ा... व्यवहारनय से यह संक्लेशपरिणाम उसमें है। निश्चय से स्वभावदृष्टि से देखें तो वे पुद्गलपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से, पुद्गल ही हैं; जीव नहीं। यह अशुभभाव जीव नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** जीव में से निकल जाते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी चीज़ ही कहाँ है वह? इसकी चीज़ हो तो वस्तु में शाश्वत् रहनी चाहिए। आहाहा! यह तो आ गया न? प्रत्येक अवस्था में हो और किसी अवस्था में न हो वह इसकी चीज़। यह तो निर्मल अवस्था (में) यह चीज़ रहती नहीं, यह चीज़ इसकी नहीं।

अब यहाँ तो यह लेना है, **विशुद्धिस्थान,...** राग की मन्दता के दया के, दान के, व्रत के, भक्ति के, पूजा के, नामस्मरण के, वाँचन के... आहाहा! ऐसे जो शुभभाव-विशुद्धिस्थान-शुभ के असंख्य प्रकार-शुभराग के असंख्य प्रकार, पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, अकेला पुद्गल नहीं, यहाँ कर्म लेना है। पुद्गलकर्मपूर्वक, ऐसा। **पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से... क्योंकि पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं...** आहाहा! कहो, पण्डितजी! यह पंच महाव्रत के परिणाम पुद्गल हैं-ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शास्त्र का ज्ञान, वह शब्दज्ञान, वह पुद्गल है। आहाहा! नवतत्त्व की श्रद्धारूप राग पुद्गल है। छह काय की दया और पंच महाव्रत का भाव (पुद्गल)। आहाहा! चैतन्यपूर्वक चैतन्य के स्वभावपूर्वक वे होते हैं? भगवान चैतन्यस्वभाव तो निर्मल शुद्ध आनन्द है। उस चैतन्यपूर्वक यह विकार होता है? (नहीं)। आहाहा! इस कारण से शुभभाव... आहाहा! वे सब **पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से,...** होते हुए, ऐसा। **सदा ही अचेतन होने से, पुद्गल ही है...** आहाहा! लोगों को ऐसी बात कठिन पड़ती है।

**मुमुक्षु :** हमें करना क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह करना। त्रिकाली द्रव्य पर दृष्टि करना-ऐसा करना, यह

कहते हैं। चैतन्यद्रव्य भगवान जलहल ज्योति... अभी आयेगा। प्रकाश की मूर्ति अन्दर प्रभु त्रिकाल है। आहाहा! जिसमें पर्याय के भेद नहीं। आहाहा! वहाँ दृष्टि देना, उसने आत्मा जाना है और माना है, ऐसा कहने में आता है - ऐसी बात है। आहाहा! (यह) विशुद्धिस्थान (हुए)।

**संयमलब्धिस्थान,...** ठीक! रंग, राग और भेद। भाई ने तीन नाम दिये हैं। ये तीनों इसमें हैं। आहाहा! रंग, राग और भेद भगवान आत्मा में नहीं; निराला है। इनसे प्रभु आत्मा अन्दर निराला है। आहाहा! व्यवहारनय से पर्याय में इसके हैं। पर्यायनय से पर्याय में इसके हैं परन्तु द्रव्यदृष्टि के स्वभाव की अपेक्षा से, ये स्वभावपूर्वक नहीं हुए। स्वभाव कारण और शुभ, लब्धिस्थान आदि हुए, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उस आनन्दपूर्वक संयमलब्धिस्थान नहीं। कारण यह नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो संयमलब्धिस्थान (कहकर) ठेठ ले गये।

**पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से,...** आहाहा! अभेद में भेद नहीं, यह बताना है। पर्याय में जो कोई भेद दिखते हैं... आहाहा! वह व्यवहारनय का विषय है। परमार्थदृष्टि से वे पुद्गल के हैं। आहाहा! है? ये लब्धिस्थान भी, ऐसा। इसलिए पूर्व में जो गुणस्थान कहे, वैसे ये स्थान भी, रागादि सब **भी पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से पुद्गल ही हैं-जीव नहीं, ऐसा स्वतः सिद्ध हो गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि रागादिभाव जीव नहीं हैं।** राग—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव, वे जीवस्वरूप नहीं। आहाहा! पर्याय में हैं, परन्तु जीवस्वरूप जो त्रिकाली है, उसके ये नहीं। आहाहा! आहाहा! क्योंकि भगवान चैतन्यस्वभाव आत्मा, उस चैतन्यस्वभावपूर्वक भेद पड़े हैं? आहाहा! यदि चैतन्यस्वभावपूर्वक भेद पड़े तो भेद सदा ही रहे। आहाहा! सर्वत्र लोगों को अभी बस, शुभभाव करते-करते संयम व्रत, तप, प्रतिमा लेते-लेते, करते-करते निश्चय शुद्ध हो जायेगा (ऐसी मान्यता है)। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि वह करते-करते पुद्गल हो जायेगा। कर्म बन्धन होगा अर्थात् पुद्गल हो जायेगा। आहाहा! यह सादड़ी-बादड़ी में कहीं नहीं है। सादड़ी में सादड़ी है मुम्बई की। आहाहा! यह तो सर्वत्र.. ओहोहो!

यहाँ तो परमात्मस्वरूप चैतन्य अनादि-अनन्त नित्यानन्द चैतन्यस्वभाव... आहाहा!

और वह स्वसंवेद्य स्वयं से ज्ञात होता है। ये रागादि पुद्गल हैं, इनसे ज्ञात नहीं होता। आहाहा! बहुत स्पष्ट! बहुत स्पष्ट!! ओहोहो! सूर्य के चमत्कार जैसी स्पष्ट बात की है, भगवान! तू तो चैतन्यस्वभावी वस्तु है न, प्रभु! उस चैतन्यस्वभावपूर्वक क्या होता है? चैतन्यस्वभावपूर्वक तो निर्मलदशा होती है, भेद नहीं। आहाहा! यह अन्दर कहेंगे।

**भावार्थ - शुद्धद्रव्यार्थिकनय की दृष्टि में...** क्या कहते हैं? शुद्ध द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, उसके प्रयोजन के नय से... आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध त्रिकाल, उसके द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके अर्थ अर्थात् प्रयोजन की दृष्टि से चैतन्य अभेद है। वस्तु अभेद है। राग भी नहीं, दया, दान भी नहीं, लब्धिस्थान आदि नहीं। आहाहा! शुद्धद्रव्यार्थिक- शुद्ध द्रव्य के प्रयोजन की दृष्टि से देखो तो वह चैतन्य तो अभेद है। आहाहा! चैतन्य अभेद और भेद... यह किस प्रकार का उपदेश? एकेन्द्रिया, द्वोइन्द्रिया, त्रीइन्द्रिया, चौइन्द्रिया... नहीं? सपाणी! इच्छामि पडिक्कमणां... तस्सुतरी करणेन...

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ने कहा, वह सन्तों ने जगत में प्रसिद्ध / आत्मख्याति प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! प्रभु! तू तो शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से अभेद है न! आहाहा! और वहाँ दृष्टि देने योग्य है न! आहाहा! यह करना यह। आहाहा! आहाहा! **शुद्धद्रव्यार्थिक नय की दृष्टि में...** दृष्टि में। **चैतन्य अभेद है और उसके परिणाम भी स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शन हैं।** देखो! वे (पूर्वकथित) भेद हैं वे नहीं। इसके परिणाम एकदम अभेद ज्ञान-दर्शन-चारित्र। शुद्धस्वभाव, इसके परिणाम ज्ञातादृष्टा के परिणाम, आनन्द के परिणाम हों। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**उसके परिणाम...** किसके? जो चैतन्य अभेद है, वस्तु अभेद है, उसके परिणाम ज्ञान-दर्शन आदि परिणाम हैं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जीव के नहीं। चैतन्यस्वभाव का वह परिणमन नहीं। आहाहा! ऐसी बातें, अरे! निवृत्ति नहीं मिलती। एक तो पूरे दिन धन्धा और पाप में पड़ा, उसमें धर्म की बात सुनने जाये, वहाँ मिले सब पाप का। आहाहा! व्रत करो और अपवास करो, भक्ति करो और यात्रा करो... यह सब तो राग है और राग है, वह पुद्गल का परिणाम है, ऐसा यहाँ कहा है और उसे (लोग) धर्म मानते हैं।

**श्रोता :** ...पुद्गल हो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पुद्गल ही है। आहाहा! भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वभाव, जागृत स्वभाव... आहाहा! जागती ज्योतस्वरूप प्रभु अभेद है। शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से तो वह अभेद है और उसके परिणाम हैं, वे जानन-देखन, आनन्द आदि परिणाम हैं। आहाहा! वे संयमलब्धिस्थान तो भेद थे। यह तो अभेद के अवलम्बन से जो ज्ञान-दर्शन हों, वे उसके परिणाम हैं। आहाहा!

**उसके परिणाम भी स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शन हैं।** देखो! **परनिमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार...** आहाहा! आत्मा की पर्याय में राग, द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, विकल्प, जो राग दिखता है, वह चैतन्य के विकार हैं। चैतन्यस्वभाव के भाव नहीं, चैतन्यस्वभाव के भाव नहीं, विकार हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव के नूर का पूर, तेज है, उसके परिणाम तो ज्ञान-दर्शन के परिणाम होते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहा!

**परनिमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार,...** अब क्या कहते हैं? चैतन्यस्वभाव से जो परिणाम होते हैं, वे तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द। अब उसकी पर्याय में परनिमित्त से जो विकार होता है... क्योंकि विकार करने-कराने का कोई गुण नहीं, कोई स्वभाव नहीं। तब वह विकृत पर्याय आत्मा में होती है, वह परनिमित्त से होती है। निमित्त का अर्थ, होता है अपनी पर्याय में, परन्तु निमित्त के लक्ष्य से, भेद से होता है। आहाहा! इस कारण से... आहाहा! **यद्यपि चैतन्य जैसे दिखाई देते हैं...** आहाहा! ये शुभ और अशुभभाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव; हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, काम का भाव, वह पर्याय में चैतन्य का विकार है। वह चैतन्य के स्वभाव के परिणाम नहीं। चैतन्यस्वभाव नहीं और चैतन्यस्वभाव के वे परिणाम नहीं, तो वह विकृत अवस्था जो होती है, वह कर्म के निमित्त से विकृत अवस्था जो है, वह चैतन्य जैसी दिखती है। मानो वह चैतन्य है, चैतन्य की पर्याय में है, ऐसी दिखती है। **तथापि, चैतन्य की सर्व अवस्थाओं में व्यापक न होने से...** भगवान चैतन्यस्वरूप प्रभु की प्रत्येक अनादि-अनन्त अवस्थाओं में वह रहनेवाला नहीं है। विकार तो, अनादि-अनन्त जो स्वभाव है, उसकी पर्याय में वह अनादि-अनन्त

रहनेवाला नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश अब। आहा!

**चैतन्य की सर्व अवस्थाओं में व्यापक...** अर्थात् रहते नहीं, इसलिए **चैतन्यशून्य हैं...** आहाहा! ये पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, गुणस्थान आदि सब चैतन्य से शून्य है, उनमें चैतन्य का अभाव है। अभाव है, इसलिये कर्मपूर्वक होते होने से उन्हें पुद्गल में डाल दिया है। आहाहा! ऐसा वीतरागधर्म! पहले सम्यग्दर्शन और उसका विषय क्या है, यह पहली समझने की आवश्यकता है, बाकी सब तो ठीक। आहाहा!

सम्यग्दर्शन-प्रथम धर्म की शुरुआत, उसका विषय चैतन्यस्वभावी अभेद वस्तु उसका विषय है। उसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय कहो या सम्यग्दर्शन का विषय कहो या पूर्ण स्वरूप भगवान, उसके परिणाम जो सम्यग्दर्शन आदि हैं, वे उसके परिणाम होने से वे जीव हैं। रागादि और भेदादि स्वभावपूर्वक नहीं होते होने से, निमित्तपूर्वक होते होने से, पुद्गलकर्म के निमित्तपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से, पुद्गल हैं। आहाहा! ऐसी बात है, लो! यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव किया तो धर्म हो गया (ऐसा लोग मानते हैं)। मूढ़ है, वह तो मिथ्यादृष्टि है, उसे जैनधर्म की खबर नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** खबर भी नहीं और गन्ध भी नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बन्ध है, पक्का बँधता है। पता नहीं, पता नहीं। उसे पता नहीं, इसलिए कहीं सत्य हो जायेगा? आहाहा! देखो न पण्डित जयचन्दजी ने कितना स्पष्टीकरण किया है?

**परनिमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार,...** क्योंकि चैतन्य के स्वभाव से वे विकार नहीं होते। जो कुछ गुणस्थान, पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे चैतन्यस्वभावपूर्वक नहीं होते। यदि चैतन्यस्वभावपूर्वक हों, वह तो निर्मल आनन्द, ज्ञान-दर्शन के परिणाम होते हैं। आहाहा! और वे चैतन्यस्वभावपूर्वक नहीं होते होने से, पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से उन्हें अचेतन कहा गया है। आहाहा! अब अचेतन जो राग और दया, दान के, प्रतिमा के, व्रत के परिणाम (होते हैं,) उनसे आत्मा को धर्म होता है, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पुद्गल से जीव को लाभ होता है, (यह तो) ऐसा हुआ। जड़

से चैतन्य की जागृति में लाभ हुआ - ऐसा हुआ, परन्तु ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत अन्तर है।

**जड़ है...** ये पुण्य और पाप के, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, चैतन्यस्वभाव से शून्य होने से और पुद्गलकर्म के कारण से इसकी विकृत अवस्था है परन्तु उसके कारण होती होने से-चैतन्यस्वभाव से राग शून्य है, शून्य होने के कारण वह जड़ है। चैतन्यस्वभाव से दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह राग, चैतन्यस्वभाव से शून्य होने से जड़ है। अरे... अरे! ऐसी बात। शान्तिभाई! यह श्वास निकल जाये ऐसा है यह सब। जवाहरात का धन्धा, स्त्री, पुत्र को सम्हालने का भाव, अकेला पाप, वह चैतन्यस्वभाव से उत्पन्न नहीं हुआ। आहाहा! वे पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से, अचेतन होने से पुद्गल और जड़ है। आहाहा!

**और आगम में भी उन्हें अचेतन कहा है।** देखा? **शुद्धद्रव्यार्थिक नय की दृष्टि में...** यह विकार है तो चैतन्य की पर्याय में, तथापि आगम में उस विकार को अचेतन कहा है। आहाहा! दो बातें हुई। **भेदज्ञानी भी उन्हें चैतन्य से भिन्नरूप अनुभव करते हैं,...** तीसरी बात। आहाहा! पहले तो न्याय से बात सिद्ध की, कि भगवान आत्मा जो है, वह तो चैतन्य निर्मलानन्द अभेद है। उसमें जो पर्याय में विकार होता है, वह चैतन्यस्वभावपूर्वक नहीं होता। चैतन्य में कहाँ विकार है तो उस पूर्वक हो? इसलिए यह पुण्य और पाप, दया, दान, रागादि के भाव, ये सब कर्मपूर्वक होते होने से चैतन्य का अभाव होने से, पुद्गल और जड़ कहे गये हैं। आहाहा! और आगम में भी ऐसा कहा है। पहले युक्ति से सिद्ध किया और आगम में भी ऐसा कहा है। दो (बातें)।

**भेदज्ञानी भी...** आहाहा! भेद का आश्रय न लेकर, अभेद का आश्रय लेकर अनुभव करते हैं, उसमें भेद और राग नहीं आते। आहाहा! आगम, युक्ति और भेदज्ञान तीनों से यह सिद्ध है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें लोगों को एकान्त लगती है। यह कौन कहते हैं? यह तो भगवान कहते हैं आगम कहते हैं, भगवान कहते हैं और... आहाहा! भेदज्ञान करनेयोग्य है, वे भी ऐसा देखते हैं कि उसमें भेद नहीं आते। राग से, भेद से भिन्न अभेद का अनुभव करने से... आहाहा! उसमें भेद और राग नहीं आते, इसलिए वह जड़ और अचेतन है। आहाहा! अरे! आहाहा!

हमारे सम्प्रदाय में गुरु थे, वे तो बस इतना कहते, हजारों सभा-हजारों लोग (आते)। अहिंसा-परजीव की दया पालना, पर को नहीं मारना, यह सिद्धान्त का सार है और ऐसा जिसने जाना, उसने सब जाना - ऐसा कहते बेचारे! आहाहा! क्रियाकाण्ड में बहुत प्रसिद्ध थे। काठियावाड़ में हीरो कहलाते परन्तु वस्तु का (पता नहीं) आहाहा! अरे रे! सुना नहीं, यह वस्तु नहीं थी। आहाहा!

भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरा स्वभाव क्या है? प्रभु! त्रिकाली शाश्वत् स्वभाव क्या है? वह तो चैतन्यस्वभावी कायम है। चैतन्यस्वभावी कायम है, उस स्वभावपूर्वक विकार होता है? स्वभावपूर्वक तो स्वभाव की निर्मल पर्याय होती है। आहाहा! न्याय से इसे कुछ समझना पड़ेगा न? जिन्दगी चली जा रही है। आहाहा! एक के बाद एक देखो न! लोग चले जाते हैं। यह मर गया, यह मर गया। मरे कौन? इस भव में से दूसरे भव में गया। आहाहा! ऐसा मनुष्यभव, उसमें तीर्थंकर तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव, आत्मा को कैसा कहते हैं, यह समझ में नहीं आये... आहाहा! वह जिन्दगी निष्फल है। पशु को मनुष्यपना मिला नहीं और इसे मिला परन्तु किया नहीं; (इस प्रकार) निष्फल है। आहाहा!

तीन बात ली है। चैतन्यस्वभाव असली शाश्वत् ज्ञान-आनन्द-शान्त वीतरागस्वभाव, उस स्वभावपूर्वक विकार नहीं होता, वह स्वभाव तो शुद्धनिर्मल है। आहाहा! तो उस पूर्वक विकार नहीं होता। पर्याय में विकार तो है सही, पर्याय में विकार है तो सही, तो वह क्या? दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के भाव तो हैं। तो कहते हैं **पुद्गल कर्मपूर्वक,** पुद्गल से नहीं; पुद्गल कर्मपूर्वक होने से वे शुभ और अशुभभाव तथा भेदभाव, वे सब पुद्गल कर्मपूर्वक होते होने से उनमें चैतन्य का तो अभाव है; इसलिए उन्हें पुद्गल कहा। आहाहा! और चैतन्य की पर्याय में से निकल जाते हैं। यदि इसका भाव हो तो शाश्वत् रहे। आहाहा! सिद्ध में तो वह है नहीं। इसका हो तब तो सदा रहे। आहाहा! पर्याय में त्रिकाल द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से पर्याय में विकृत जो अवस्था है, वह स्वभावपूर्वक नहीं होती होने से, कर्मपूर्वक होने से सदा अचेतन कही गयी है; इसलिए वह जड़ है। आहाहा! लॉजिक से-न्याय से, आगम से और अनुभव से तीन प्रकार से बात करते हैं। आहाहा!

भेदज्ञानी धर्मी जीव आत्मा का अनुभव करता है, तो उसमें राग और भेद नहीं

आता। आहाहा! इसलिए राग और भेद आत्मा के नहीं हैं। आत्मा के हों तो आत्मा के अनुभव में वे भी आना चाहिए। आहाहा! ऐसी बात है। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे यह क्या है? ऐसा धर्म? यह सब व्रत, तप, और अपवास करना और भक्ति करना, यात्रा करना, भगवान के दर्शन करना, भगवान की मूर्ति स्थापित करना, रथयात्रा निकालना... अरे! सुन न भाई! यह क्रिया तो पर की है, तेरा भाव जो होता है तो वह राग है और वह राग स्वभावपूर्वक का-स्वभाव का कार्य नहीं है। आहाहा! वह तो पुद्गलपूर्वक होता होने से पुद्गल का कार्य है। आहाहा! गजब बात करते हैं।

अरे! ऐसा सुनने को मिले नहीं, उसे कहाँ जाना? भव को बदलकर कहीं जायेगा। आहाहा! जिसने आत्मा अभेद, पुद्गलपूर्वक के विकार से रहित (अनुभव नहीं किया) आहाहा! ऐसे स्वभाव की दृष्टि और ज्ञान नहीं किया, वह मरकर भटक जायेगा। निगोद और नरक आदि में जायेगा। आहाहा! आहाहा! एक-एक गाथा कितने लॉजिक, न्याय, आगम और अनुभवी को सौंप (दिया है)। यह आया है न उसमें? ४९ गाथा में नहीं? भेदज्ञानी को सर्वस्व सौंप दिया है। आहाहा! है न? अर्थात् क्या?

जो आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु है, उसका जो अनुभव करता है तो उस भेदज्ञानी को राग और भेद (अनुभव में) नहीं आते। तब तो सर्वस्व सौंप दिया कि तेरी चीज़ में ये नहीं। अनुभव में आता है तो वहाँ ज्ञान, आनन्द और शान्ति आते हैं; वहाँ राग और भेद अनुभव में नहीं आते। इसलिए भेदज्ञानी को सर्व सौंप दिया है। आहाहा! यह तो हा... हो... हा... हो... ऐसी बड़ी यात्रायें हों और उनमें हजारों लोग एकत्रित हों। यहाँ शत्रुंजय कितने एकत्रित हुए होंगे? वहाँ कहाँ धर्म था? वह तो सब शुभराग है। वह राग है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! वह तो पुद्गल का कार्य है। कठिन पड़ता है बापू!

**प्रश्न - यदि वे चेतन नहीं हैं तो क्या हैं? वे पुद्गल हैं या कुछ और?** प्रश्न - चेतन नहीं हैं। पुण्य, पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोधभाव, वे चेतन आप नहीं कहते हैं, प्रभु! तो क्या है? वे पुद्गल हैं या अन्य कोई?

**उत्तर - वे पुद्गलकर्मपूर्वक होते हैं, इसलिए वे निश्चय से पुद्गल ही हैं....** आहाहा! व्यवहार से पर्याय में हैं तो कहने में आते हैं, परन्तु पर्याय में रहते हैं, वे कायम

नहीं रहते। आहाहा! आहाहा! द्रव्य और गुण में तो नहीं परन्तु पर्याय में भी कायम नहीं रहते। आहाहा! आहाहा! **पुद्गलकर्मपूर्वक होते हैं, इसलिए वे निश्चय से पुद्गल ही हैं क्योंकि कारण जैसा ही कार्य होता है।** यह पुद्गल कारण है और रागादि कार्य है तो इसके (पुद्गल के) कारण का यह कार्य है। आहाहा! वापस कोई ऐसा लगा दे कि देखो! कर्म के कारण राग होता है। यहाँ ऐसा नहीं, यहाँ तो जीवद्रव्य में-पर्याय में विकार होता है तो इसे स्वयं के कारण से, परन्तु त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि में वह नहीं, इस कारण पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से विकार को पुद्गल में डाल दिया, परन्तु कोई ऐसा मान ले कि कर्म के कारण हमें राग होता है, कर्म के कारण राग होता है तो ऐसा नहीं है। आहाहा! हमें तो अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे कर्म के कारण होते हैं, ऐसा नहीं। होते हैं तो तेरे अपराध से, परन्तु अपराध कोई स्वभाव का कार्य नहीं है। समझ में आया?

भगवान निरपराधी भगवानस्वरूप प्रभु अनाकुल आनन्द और अनाकुल ज्ञान की मूर्ति प्रभु का यह अपराध कार्य नहीं है। निरपराधी भगवान का कार्य यह अपराध नहीं है। आहाहा! इसलिए दृष्टि के विषय में-अभेद में वह नहीं है, क्योंकि दृष्टि का विषय तो अभेद चैतन्यस्वभाव है। सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय तो त्रिकाल अभेद है, तो अभेद की दृष्टि में वह स्वभाव है उसका पर्याय में भेद होता है परन्तु अभेद के कारण से, स्वभाव के अभेद के कारण से राग और भेद होता है - ऐसा नहीं है। इसकी पर्याय में होते होने पर भी... आहाहा! गजब है न! आहाहा!

**पुद्गल ही है...** आहाहा! **निश्चय से पुद्गल ही है।** देखा? **क्योंकि कारण जैसा ही कार्य होता है।** आहाहा! जौ में से जौ होते हैं। जौ कारण और गेहूँ, बाजरा कार्य-ऐसा होता है? जौ कारण और बाहर में बाजरा उग गया! बाजरा कहते हैं न? क्या कहते हैं? बाजरा! जौपूर्वक जौ (होते हैं)। जौ कारण और उसका कार्य भी जौ। इसी प्रकार पुद्गलकर्मपूर्वक विकार होता है तो उस पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से पुद्गल ही है। आहाहा! परन्तु इस कारण से, हों! ऐसा मान ले कि विकार अपने से नहीं होता, पर से होता है, वह बात यहाँ नहीं है। विकार की उत्पत्ति तो अपनी पर्याय में वह जन्मक्षण है। विकार की उत्पत्ति का काल है तो अपने अपराध से उत्पन्न होता है परन्तु यहाँ तो स्वभाव की दृष्टि

में नहीं अथवा स्वभाव का कार्य नहीं, स्वभाव नहीं, स्वभाव का कार्य नहीं। आहाहा!

इस कारण से पुद्गल, कारण है और विकार, कार्य है—ऐसा कहकर भेद कराया है। समझ में आया? आहाहा! अरे रे! यह कहाँ है? क्या कहलाता है तुम्हारे? बड़ा पर्वत? यह यात्रा का... शिखरजी! 'एक बार वंदे जो कोई...' आहाहा! सम्मेदशिखर, परन्तु वह क्या है? उसे वन्दन करने का भाव तो शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं, क्योंकि वह तो परलक्ष्यी भाव है। आहाहा! और वह शुभभाव कोई भगवान आत्मा त्रिकाली स्वभाव चैतन्यस्वरूप भगवान, उस ध्रुवस्वभावपूर्वक वह विकार, राग हुआ है? बस! तब वह ध्रुवस्वभावपूर्वक नहीं हुआ तो पर्याय में कर्मपूर्वक विकार हुआ है, इस अपेक्षा से (पुद्गल) कहने में आया है। है तो इसका अपराध, इसके स्वतन्त्र उपादान से होता है परन्तु अब डालना किसमें, यह बात है। आहाहा! कर्म कराता है, इसलिए विकार होता है, यह प्रश्न है नहीं, परन्तु यहाँ विकार है, वह त्रिकाली ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु का वह कार्य नहीं। उसका कार्य तो आनन्द, शान्ति और ज्ञान-दर्शन का कार्य आना चाहिए। इसलिए त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वभाव का वह कार्य नहीं तो पर्याय में तेरे अपराध से होता है, तथापि वह कर्मपूर्वक होता है; इसलिए उसे कर्म में डाल दिया। समझ में आया? आहाहा! अरे रे! लोगों को कहाँ पहुँचना? यहाँ तो अभी जीव किसे कहना, यह बात है।

अन्तःतत्त्व भगवान आत्मा... आहाहा! जो परमात्मस्वरूप है, वह अन्तः तत्त्व जो परमात्मस्वरूप जो भगवान अभी है, हों! आत्मा, तो परमात्मस्वरूप का कार्य राग है? है तो उसकी पर्याय में उसके अपराध से होता है। आहाहा! परन्तु वह परमात्मस्वभाव का कार्य नहीं है। इसलिए अध्धर से पर्याय में उत्पन्न हुआ, द्रव्य-गुण के आश्रय बिना अध्धर से उत्पन्न हुआ; इसलिए उसे पुद्गल का कार्य गिनने में आया है। ऊपर-ऊपर (हुआ है)। आहाहा! यद्यपि निर्मल भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उसके निर्मल परिणाम भी ऊपर-ऊपर रहते हैं, वे कहीं अन्दर प्रवेश नहीं करते। समझ में आया? परन्तु ये जो परिणाम हैं, वे ऊपर-ऊपर से कर्म के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से उत्पन्न हुए हैं, स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुए। आहाहा! ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं, वह कहाँ जाये? अरे! देह चली जाती है, एक के बाद एक। आहाहा! ये संस्कार अन्दर न पड़े तो कहाँ जायेगा? भाई! आहाहा!

बहुत सरस! जीव-अजीव अधिकार यहाँ पूरा होता है न? जीव-अजीव अधिकार यहाँ ६८ (गाथा में) पूरा होता है। अन्तिम गाथा है न! आहाहा! छेल्ली, समझे? अन्तिम।

**इस प्रकार यह सिद्ध किया कि पुद्गलकर्म के उदय के निमित्त से होनेवाले...** यहाँ वे प्रश्न उठाते हैं, देखो! निमित्त से हुए या नहीं? किस अपेक्षा से बात है? निमित्त-पुद्गल है, उसके आश्रय से उत्पन्न हुए हैं। हुए हैं तो अपनी पर्याय में अपने कारण से, परन्तु निमित्त के आश्रय से हुए तो स्वभाव का कार्य नहीं, तो निमित्त का कार्य है-ऐसा कहा गया है। आहाहा! विवाद... विवाद... विवाद... झगड़ा... झगड़ा... उठे। देखो! है? **पुद्गलकर्म के उदय के निमित्त से होनेवाले चैतन्य के विकार...** लो! यहाँ स्वभाव का आश्रय नहीं तो इस पुद्गल का आश्रय कहने में आया है। ऐसी बातें अब। **इस प्रकार यह सिद्ध किया कि पुद्गलकर्म के उदय के निमित्त से...** यहाँ यह विकार है तो चैतन्य की पर्याय में, परन्तु यह स्वभाव का कार्य नहीं है, इस अपेक्षा से निमित्त के लक्ष्य से, आश्रय से हुए हैं तो ये निमित्त के हैं। **चैतन्य के विकार भी जीव नहीं,...** ऐसा। जड़ तो जड़ है ही, कर्म जड़ है, शरीर जड़ है, वह तो ठीक परन्तु यह तो पुद्गल कर्म के (निमित्त से) चिद्विकार हुए वे पुद्गल हैं, इस कारण से। विकृत अवस्था निमित्त के आधीन हुई होने से, पर्याय में त्रिकाल स्वभाव का आश्रय नहीं, इस कारण से पर के आश्रय से हुए तो पर से हुए, इस प्रकार पर के कहे गये हैं। आहाहा! भारी विवाद!

कहते हैं, पुद्गलकर्म तो जड़ है परन्तु उसके निमित्त से होनेवाले चैतन्य विकार भी जीव नहीं। ऐसा। आहाहा! कर्म जो पुद्गल हैं, वे तो पुद्गल हैं ही, परन्तु उनके निमित्त से यहाँ पर्याय में (विकार हुआ), द्रव्य-गुण में तो है नहीं, पर्याय में विकार अध्धर से उत्पन्न हुआ.. आहाहा! तो वह पुद्गल ही है। आहाहा! इस अपेक्षा से समझना चाहिए। उसमें ऐसी अपेक्षा लगा दे कि देखो! उपादान से होता है, निमित्त से नहीं होता और यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त से होता है। क्या अपेक्षा है? प्रभु! उपादान से ही होता है, जीव में विकार अवस्था उपादान से होती है। पर्याय का उपादान, हों! द्रव्य-गुण का उपादान नहीं। आहाहा! पर्याय के उपादान में स्वयं से विकारभाव कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान से षट्कारक से पर्याय में विकार होता है, परन्तु वह विकार स्वभाव का कार्य नहीं और कायम

रहनेवाली चीज़ नहीं, इसलिए पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से उसका कार्य है, इसलिए उन्हें पुद्गल कहने में आया है। इतनी सब बातें! आहाहा!

लोग मध्यस्थता से सुने नहीं, विचारे नहीं, पढ़े नहीं और अपनी दृष्टि रखकर पढ़े। शास्त्र को क्या कहना है, ऐसी अपनी दृष्टि न करे, अपनी दृष्टि से शास्त्र का विचार करे। शास्त्र का हल अपनी दृष्टि से करे परन्तु शास्त्र की दृष्टि क्या है, इस दृष्टि से अपनी दृष्टि नहीं करते। पण्डितजी! आहाहा!

यही प्रश्न उठा था न? २०१३ के साल, २२ वर्ष हुए। वर्णीजी के साथ में। विकार है, वह अपनी पर्याय में अपने षट्कारक से उत्पन्न होता है, परकारक से निरपेक्ष है, देखो! ६२ गाथा। सब बैठे थे। हिम्मतभाई, रामजीभाई, फूलचन्दजी, कैलाशचन्दजी सब थे। तुम थे? नहीं? आहाहा! कहा, देखो! यह ६२ गाथा तो ऐसा कहती है कि आत्मा के द्रव्य-गुण में तो विकार नहीं परन्तु पर्याय में जो विकार है, वह विकारी पर्याय षट्कारक से स्वयं से उत्पन्न होती है, द्रव्य-गुण से नहीं, परकारक-निमित्तकारक से नहीं। आहाहा! अरे! विकृत पर्याय, द्रव्य-गुण के कारण नहीं हुई, क्योंकि द्रव्य-गुण में कहाँ विकार है? आहाहा! और पर से कहाँ हुई है? पर को तो स्पर्श ही नहीं करती। पर जो निमित्त है, उसका तो यहाँ विकार में अभाव है और विकार है, उसका कर्म पर्याय में अभाव है। आहाहा! जब उसकी पर्याय ज्ञेय... यह ज्ञेय अधिकार है, यहाँ पंचास्तिकाय अधिकार है। पंचास्तिकाय, जीवास्तिकाय सिद्ध करना है। जीवास्तिकाय में जो पुण्य-पाप विकार होता है, वह जीवास्तिकाय का है। पर्याय का विकार पर्याय में स्वयं से है। आहाहा! क्या हो? आहा! शुभ आचरण से जीव को धर्म हो, यह बात उसने ऐसी दखल कर दी है। बड़े मानधाताओं को भी वहाँ से हटना कठिन पड़ता है। आहाहा! यदि तुम शुभभाव को धर्म न कहो तो क्या तुम्हें खाना-पीना है? ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! यह बात कहाँ है? ऐसा कहते हैं, उपवास करना और व्रत पालने में धर्म नहीं, तो क्या तुम्हारे खाना-पीना वह धर्म है? अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? खाना-पीना कौन कर सकता है? उसमें राग होता है, वह राग अशुभ है। आहा! और यह जो व्रत, तप का भाव है, वह शुभराग है। आहा! दोनों ( भाव ) पर्याय में स्वयं से हुए होने पर भी... चैतन्य विकार कहा न? चैतन्य की पर्याय में विकार

है, ऐसा होने पर भी, स्वयं हुए हैं, तथापि स्वभाव की दृष्टि से देखो तो... पर्याय में विकार है, वह स्वयं से है, परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो, त्रिकाल भगवान ज्ञायकस्वरूप प्रभु, उस अभेद की दृष्टि से देखो तो विकार अवस्था अपने में अपना है नहीं। स्वभाव भगवान अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण का पिण्ड प्रभु, अकेला पवित्र और शुद्ध है, कोई शक्ति और कोई गुण विकृत नहीं है। आहाहा! इस कारण से अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उस स्वभाव का कार्य राग नहीं है। पर्याय में राग होता है, वह द्रव्य-गुण से नहीं। पर्याय में होता है, वह स्वयं के अपराध से होता है। उसमें द्रव्य-गुण कारण नहीं; निमित्त, कारण नहीं; परकारक की अपेक्षा नहीं। अब यहाँ स्वभाव की दृष्टि सिद्ध करनी है। आहाहा!

भगवान! तेरा त्रिकाली स्वभाव क्या है? कायम रहनेवाला... कायम रहनेवाला... कायम रहनेवाला... आहाहा! वह तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता-ऐसा कायम रहनेवाला द्रव्य का स्वभाव तो वह है। आहाहा! उस स्वभाव का कार्य विकार है? स्वभाव का कार्य विकार है? पहले तो कहा था कि विकार, विकार से है; द्रव्य-गुण से हुआ नहीं। समझ में आया? द्रव्य स्वभाव का कार्य नहीं। पर्याय का-अध्धर का कार्य है। आहा! परन्तु अब यहाँ चैतन्यस्वभाव की अभेददृष्टि करानी है... आहा! तो इसकी पर्याय में होने पर भी, अपने त्रिकाली स्वभाव का वह कार्य नहीं है; इसलिए उसे निकाल देने के लिये कहा है। पुद्गलकर्मपूर्वक होते होने से उन्हें पुद्गल कहा गया है, ऐसी बात है प्रभु! आहाहा! समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)